गद्य कविताएं

अश्वों की पीठ पर

मधुकर गौड़

सार्थक साहित्य प्रकाशन, बम्बई.

अश्वों की पीठ पर – मधुकर गौड़

मधुकर गौड़

मुख पृष्ठ सज्जा –
कमलेश गौड़/कु. सविता गौड़

प्रथम संस्करण–१९९०

प्रकाशक –
सार्थक साहित्य प्रकाशन (बंबई)
डी/३, शांति नगर, दत्त मंदिर रोड़,
मालाड़ (पूर्व), बम्बई-४०० ०९७.

मुद्रक –
मून आर्ट प्रेस
चन्द्रा स्मृति, भायन्दर (पूर्व) – ४०१ १०५.

मूल्य : ३०) रुपये

ASHWON KI PEETH PAR
MADHUKAR GAUR

भूमिका

कविता कोई मनोरजन का साधन नही है, और न ही समय काटने के लिए बैठेठाले का जुगाड, आत्माभिव्यक्ति का एक माध्यम होने के बावजूद वह निजी डायरी से भी इस माने में अलग और सार्वजनिक है कि उसके साथ पाठक या श्रोता होता है। अर्थात् सम्प्रेषण, काव्यकर्म के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ मुद्दा है। सम्प्रेषण अर्थात् अपनी बात दूसरों तक पहुचाने की प्रक्रिया में सामाजिकता और सार्वजनिकता एक बुनियादी बात है।

इसीलिए कविता सृजनात्मक साहित्य की अन्य सभी विधाओं की तरह एक सामाजिक कर्म है। कवि यह काम समाज में रह कर करता है। सामाजिक भौतिक परिवेश की घटनाए, प्रसग और तथ्य आदि उसके अनुभव ससार का निर्माण करते हैं। अनुभव, समझ और विचार के साथ कवि की सवेदना और अनुभूति, जो कि कविता की मूल पूंजी है, कविता को सभव करती है।

जाहिर है कि हर सामाजिक कर्म की तरह ही कविता भी एक दायित्वपूर्ण कर्म है। उसका दायित्व सामाजिक विसगतियों, असमानताओं और तमाम गलत मूल्यों के खिलाफ

होने वाले जनसामान्य के संघर्ष से जुड़ते हुए उस संघर्ष को बल देना है। इसके लिए ईमानदाराना अनुभूति और तीव्र संवेदनशीलता के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ के प्रति जागरूकता भी अपेक्षित है। कविता का सामाजिक संघर्ष के साथ जुड़ाव जरुरी नहीं है कि मूर्त और ठोस हकीकत-बयानी के जरिए ही हो। आदमी की मानसिकता पर छाये जड़ संस्कारों और प्रतिगामी विश्वासों के कुहासे को तोड़ते हुए भी होता है।

मैं इसी नजरिए से कविता को पढ़ता-समझता रहा हूँ। विशेषकर समकालीन कविता को। आज के भारतीय समाज के परिदृश्य में काव्यकर्म बहुत दुष्कर और कठिन होता जा रहा है क्योंकि जहा सामाजिक विसंगतियों और विषमताओं ने आम आदमी के जीवन की त्रासदियों में इज़ाफा किया है, वहीं शोषक व्यवस्था ने कविता-साहित्य के लिए बहुत ही आकर्षक भटकाव और सुविधाजीविता के प्रलोभनों का एक अंबार भी खड़ा कर रखा है।

भाई मधुकर गौड़ ने अपने काव्य संग्रह "अश्वों की पीठ पर" की भूमिका लिखने का प्रस्ताव जब मेरे सामने रखा तो मुझे अच्छा लगा। यह मेरे लिए अपने एक समकालीन कवि को संपूर्णता में जानने-समझने का अवसर था और स्वाभाविक ही था कि यह प्रस्ताव मुझे अच्छा लगता।

भाई मधुकर गौड़ पिछले दो दशकों से कविताएं लिख रहे हैं। बम्बई जैसे महानगर में रोजी-रोटी की जुगाड़ एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति के लिए वैसे ही कोई कम मुश्किल काम नहीं है। फिर यहा कदम-कदम पर व्यावसायिकता के भटकाव हैं। वातानुकूलित भव्य सभागृहों से लेकर वैभव-संपन्न ड्राईंगरुमों की शाम-बिताऊ, पैसा-कमाऊ काव्यगोष्ठिया और काव्य स्पर्धाएं। राजनीतिक और नौकरशाहाना जी हजूरी के साथ सिनेमाई अंदाज। ऐसे में दो दशकों तक साहित्यसृजन से गंभीरता से जुड़े रहना ही अपने आप मे दमखम वाली बात है।

मधुकर भाई के काव्यसंग्रह की पाडुलिपि मे दी गई चौवन कविताओं में इस दमखम के कई तेवर और मिज़ाज देखने को मिले हैं।

मधुकर गौड़ का कवि अपने समय की सामाजिक सच्चाइयों से न केवल वाकिफ है, बल्कि एक असरदायक ढंग से उन्हें अभिव्यक्ति देता है। वह व्यवस्था के उस शोषक चरित्र का खुलासा करता है जिसमें 'अवाम को महज एक टूटी हुई दिल्ली' मिली है और जो 'गरीबों के पेट में अपनी जीत देखता है' (विवशता) जहा 'कानून किताबों में कैद है बंगले की

तिजोरियों में अनचाहे काले धन की वर्षा' है, यही 'हिंदुस्तान की असली तस्वीर' है (एक किसान का बयान) इस तस्वीर का और भी त्रासद पक्ष यह है, जहां 'मजदूरी के बदले आसू के हिलोर पाने की पीड़ा है' (शास्त्री), खेतों की सरहदें बेईमान जमींदारों ने काबू में कर रखी है' (शहर की ओर) मजदूर का जीवन इतनी अमानवीयता का शिकार है कि दूध के बदले शराब पर सपने पल रहे हैं (मा हीन, मजदूर का बच्चा) देश का जनसामान्य 'पीस न दे सकने की विवशता' में डिग्रियों के खोखलेपन से दंशित है (लालटेन, डिग्रिया और देश) लेकिन, अपने समय की मारक सच्चाइयों से कवि निराश या हताश नहीं है। मनुष्य की बेहतरी के लिए एक विश्वास उसके साथ है। नयी सुबह का गीत मेहनतकश का होगा (मेहनत का रथ) और जन सामान्य ही 'रास्तों का असली शाह' है, 'इमारतों में बैठे सत्ताधारी नहीं' (गुलाम चौराहा) कवि को यकीन है कि 'राजा की मनचाही नीतिया नहीं चल सकती' (अथ युग) इस विश्वास के साथ मधुकर गौड़ के तेवर संघर्षशील है। 'निरंतरता ही मेरी सत्ता है और संघर्ष ही मेरा त्यौहार' (अलग होते हुए) कवि 'अश्वों की पीठ पर खड़ा होना चाहता है' उनके खिलाफ जो उसे अधिकारों की सुई भर जमीन देने से इन्कार करते हैं' (अश्वों की पीठ पर) वह 'संधिमार्गों के मुकुट के अस्थायी सुख से वाकिफ है और यह भी जानता है कि 'यात्राएं इन्कलाब नहीं लाती इन्कलाब तो खून की सक्रियता का विस्तारित प्रतिफल है (त्रिनेत्री मुद्रा) कवि के इस विश्वास का आधार उसकी 'आस्था' है जो 'कोयल के कंठ में बैठी मधुर सरगम सुनाते हुए' उसे सक्रिय और प्रेरित करती है।

सामाजिक यथार्थ बोध, आम आदमी की बेहतरी का सरोकार और उसके लिए किये जाने वाले संघर्ष के लिए अपेक्षित आस्था व संकल्पशीलता के साथ सहज संवेदनात्मक अनुभूति की भाई मधुकर गौड़ की कविताएं वैचारिक स्तर पर समन्वयवादी दृष्टिकोण पर टिकी हैं। स्पष्ट रुप से शोषक और शोषित इन दो प्रमुख वर्गों में बंटे समाज की कविता समन्वयवादी दृष्टि के साथ अपनी सार्थकता का निर्वाह कैसे कर सकती है' यह प्रश्न व्यापक मानवतावाद और समन्वयपरक दृष्टि को लेकर चलने वाली कविताओं को पढ़ते हुए हमेशा मेरे मन में उठता रहा है। गौड़ जी की कविताएं पढ़ कर यही प्रश्न उठता है। मेरा मानना है कि वर्गीय समाज में समन्वयवादी नजरिया, अपने स्वर की प्रखरता और यथार्थवादी दृष्टि के बावजूद, संघर्ष-चेतना के साथ नहीं चलता। 'संघर्ष को अपना त्यौहार' मानने वाले मधुकर गौड़ के कवि का बोधिसत्व (सच के इर्द गिर्द) और गांधी की भारतीयता के प्रति जो भावनात्मक लगाव है- परोपकार की घाटियों में भगीरथी बन कर बहने 'और प्रेम से शुरुआत करके दुश्मन से मुलाकात' की जो इच्छाएं (फर्क) हैं वह यथार्थवादी संघर्षशील काव्य चेतना की अमूर्त आदर्शवादी सीमाएं बन जाती हैं। अमूर्त आदर्शवाद ही टूटे हुए सपनों को 'राम' बनाने की सार्थकता से जोड़कर (अप्रतीम कलाकार) 'संयम के तट' तलाशता है। राम अपनी तमाम मानववादी प्रतिमा के बावजूद सामंती मूल्यों-राजा और प्रजा वाली व्यवस्था-के संरक्षक ही थे।

इन वैचारिक सीमाओं के बावजूद इस संग्रह में 'सूर्यवंशी चमार' और 'नीलकंठी' जैसी कविताएं भी हैं जो वर्गीय चेतना के अंकुर लिए हुए हैं। आत्मपरक गीतों से सामाजिक बोध की कविताओं तक की मधुकर भाई की यात्रा को देख कर यह विश्वास पुख्ता होता है कि ये अंकुर निश्चित रूप से पनपेंगे और मेहनतकश अवाम की पक्षधरता की धार को और भी प्रखर बनाते हुए भाई गौड़ जी हिन्दी कविता में निश्चित ही कुछ सार्थक जोड़ सकेंगे, यही कामना भी है।

"अश्वों की पीठ पर" के रचनाकार मधुकर गौड़ को बधाई और मंगलकामनाएं।

डॉ. सोहन शर्मा

बम्बई
१२ फरवरी, १९९०.

खामोशी तोड़ते हुए

साहित्य समग्रता है, और है चिन्तन-बोध के भटकाव को सही दिशा की सार्थकता सौंपने का उपक्रम।

सहजताओं-असहजताओं के अतल मे गहरे तक पैठ गोताखोरी के पश्चात् निर्णायक रूप से स्पष्ट होता सँवरता मौलिक भाव बोध ही कविता या साहित्य की अन्य विधाओं में एक मार्मिक सतुलन से उकेरा हुआ मानचित्र है।

कर्तव्यों की छैनी के साथ सघर्षरत कवि अधिकारों की मूर्तता को खूब पहचानता है और, यह पहचान उसकी अपनी पहचान ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के जन-जन के जीवन के गहरे-हल्के रगों की पहचान भी है।

पीड़ा कविता तो है, किन्तु निरतर सहते रहने की दुर्बलता कदापि नहीं।

मानवता जब-जब, जहाँ-जहाँ भी आहत होती है, टीस उठता है रचनाकार और, वह टीस पहन लेती है केसरिया विप्लवी वसन तब बन जाती है कलम एक धारदार निष्पक्षता की न्यायिक तुला जो बाँट देती है दो हिस्सों में सत्य-असत्य को।

इन्हीं प्रासगिकताओं में मैं भी अपने कवि को अब तक देखता-परखता रहा हूँ और उसके निश्चल, निष्कपट अहसास की भाव भंगिमा से ली हुई 'अश्वों की पीठ पर' शीर्षक से ये कविताएँ आपके सम्मुख हैं।

मैं इस यात्रा में कहाँ तक सफल-असफल रहा हूँ यह मेरे चिन्तन का विषय नहीं, इसका निर्णय तो पाठकों और आलोचकों-समालोचकों के हाथ है बस, इसी विनम्रता के साथ।

मधुकर गौड़

मधुकर गौड़ का रचना संसार

प्रकाशित काव्य संकलन

* 'समय के धनुष्य' (गीत संग्रह–१००१ रु. के प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत एवम् सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ घोषित)
* 'गुलाब' (मुक्तक, रुबाई, शेर)
* 'अश्वों की पीठ पर' (गद्य कविताएँ)
* 'गीत और गीत–१' (गीत संग्रह)

सम्पादित संकलन

- 'बम्बई के हिन्दी कवि' (सर्वप्रथम प्रकाशित बम्बई के सम्पूर्ण कवियों का सपरिचय काव्य संकलन)
- 'राजस्थान के हिन्दी कवि' (सर्व प्रथम प्रकाशित राजस्थान के कवियों का सपरिचय–काव्य संकलन)
- 'गीत और गीत–२' (देशभर के गीतकारों का गीत लेखों सहित बृहद् गीत संकलन)
- 'सार्थक'
- 'नगर–ज्योति' बम्बई

शीघ्र प्रकाश्य

- 'प्रतिशोध और मुक्ति' (कहानी संग्रह)
- 'सुबह के फूल' (गीत संग्रह)
- 'तुम्हारे लिये' (गीत संग्रह)
- 'अनचिन्हें इंगित' (गीत संग्रह)
- 'साथ चलते हुए' (ग़ज़लें)
- 'श्वेत शब्द' (पथ–प्रदर्शक विचार बिन्दु)
- 'गीता का हिन्दी पद्यानुवाद'

सम्पर्क सूत्र : डी/३, शांति नगर, दत्त मंदिर रोड़, मालाड (पूर्व), बम्बई-४०० ०९७,
दूरभाष : ६९३२०८

क्रम   शीर्षक

अश्वों की पीठ पर

और फिर उसने कहा
हाँ – मैं
हाँ मैं भी
सबकी कहते कहते
हर एक दर्द को
सहते – सहते
आज अपनी भी
कुछ कहना चाहता हूँ।
अफसोस कि
शिवाजी से लेकर
तिलक, सरदार पटेल
और सुभाष के
चित्रों के बीच

अब तक अपना
चित्र बनाता हूँ।
मैं अपने से
अपनों तक गया
प्रेम के, बिरादरी के,
घर के, खून के
सपनों तक गया
मगर मुझे
हर बार
कौरव मिले
और मुझे नय
पांडव बनना पड़ा
मैं जूझता रहा
मुझे वियोग भी
आया, मगर
फिर कर्म के आदर्शों
के लिए –
मुझे हर बार
अकेला लड़ना पड़ा
क्यों कि कौरवों ने
मेरी मिली हुई वसीयत में
मेरे सुनहरे, स्नेहिल
सपनों के हाथों में
मौका पाते ही
कीलें ठोक दी
और सारी मर्यादा
रिश्तेदारी, बंधुता को
बेईमानी की भट्टी में
झोंक दी
इस मर्यादा को

सही अंजाम देने और
निभाने के कारण
लोग मुझे
अँगुलियों से देखने लगे
और बिना
सच्चाई को जाने
तह तक आने के बजाय
मुझसे अपने आप
कसे कसे
दूर रहने लगे
मैं ऐसे में
सच्चाई के लिए
सोचता हूँ
अर्जुन तो रिश्तेदारी के
मोह में
रथ के पीछे
जा बैठा था
मगर मैं "अश्वों की
पीठ पर" खड़ा
होना चाहता हूँ।
और जो मुझे
अधिकारों की सुई भर
जमीन देने से
इंकार करते हैं
उनके सारे
अवैध्य सपनों को
महाभारत बना देना
चाहता हूँ।
मुझे तो मेरी कुंति ने
हर बार पांडव बनने का

अहसास दिया है।
और मेरी
जीवन संगीनी द्रोपदी ने
मुझे पौरूषता के
सजीले कवच
पहनाये हैं।
और मेरी रगों में
भर-भर दिया है
उत्साह का
सतरंगी आवेग।
यह
मेरी जिन्दगी की
कहानी का, अंधकार
की गुफाओं में
प्रज्वलित एक
निर्भीक दीया है।
मैं तो हर जन्म में
पांडव ही रहूँगा
और उसके बाद
अपनी शेष रही
कहानी को
शायद आप ना रहे तो भी
आपकी आत्माओं से
कहूंगा
हाँ मगर
ये याद रहे
हर जन्म में
मैं पांडव था, पांडव हूँ
और पांडव रहूँगा।

□

विजय श्री

संधिमार्गों से
सिंहासन तक की यात्राएँ मैंने बहुत
निकटता से देखी है।
हो सकता है, उन क्षणों में
मुकुट बंध जाने का
अस्थायी सुख
भले ही मिल गया हो
किन्तु यह
वास्तविक सुख या
सच्चा आत्मसंतोष नहीं होता।
अतस की सारी
विवेकशील, संवेदनाएँ
अपना स्वाभिमान हार जाती है।
ऐसा लगता है जैसे
उन संधि मार्गों से
कोई पौरुष नहीं
पिशाच का आकार, आदम बना
मानवता के टुकड़े-टुकड़े कर
यहाँ तक विजय श्री से
सुशोभित हो गया है।
वो श्रम, छल कपट वाली
विषकन्याओं की
परंपराओं को ही
प्रतिपादित करता है
आत्मा को–
देदिप्यमान नहीं बना सकता।
जैसे-चोरी से फल प्राप्त कर लेना
और अपने श्रम के बल बूते
पेड़ लगाकर फल खाना

दो अलग-अलग सुख
और दो अलग-अलग
आत्मसंतोष की
अनुभूतियाँ हैं।

संकल्पित यात्रायें

कृष्ण ने, कल ही
मुझसे कहा—
अब मेरे विषय में
अय ! मनुष्य
तुम्हारी पीढ़ी को
कोई जिज्ञासायें नहीं होती।
काश ! उनको भी
कुछ – कुछ
अर्जुन की शंकाएं याद होती।
'हक माँगना –
युद्ध नहीं
जीवन की समग्रता है –
सम्पूर्णता है।
दर्पण से मुँह चुराना
और जिस्म की सलवटों पर
भोलापन लिपाना
जवानी नहीं लौटाता।
हर बार, जब भी
कौरवों से मेरा, सामना होता है
मेरी 'आस्थाओं का अर्जुन'
संपूर्ण आवेग के साथ
जाग उठता है।
और तभी–

परम सहयोगी श्री कृष्ण
मेरा हाथ बटाता है
मुझे रास्ता दिखाता है।
और इसी तरह मेरी संकल्पित यात्राएँ
विजय मुकुट बांधे
सिंहासन पर बैठी
दिखाई देती है
हर बार-लगातार।

इतिहास

खुलकर क्यों नहीं कहते ?
खुली हुई बात और
चढ़ी हुई रात
फैसले का इन्तजार नहीं करती।
कह दो और खुलकर कह दो
रजनीगंधा –
जो मुझे मिली थी
पिछले साल
इस साल भी वैसी की वैसी ही है
स्थान का, पोषण का फर्क
हो सकता है
पर यह मत पूछो गंध कैसी है ?
तुम्ही तो कहते थे
बूंद में अनेक बूंदें और छुपी होती है
कभी नहीं टूटेगी
जो हृदय में, आस्था और श्रद्धा
रुपि होती है।
तुम कहीं से भी गुजरो
निर्णय तो चलने का है

हर द्वार, ड्योढ़ी, गली-गाँव
मन की परत दर परत
अंधकार में जलने का है।
जलो या फिर चलो
कर्म में कोई फर्क नहीं
यों भी रोकर
या रुककर
कहाँ पहुँच पाओगे ?
खुद को मिटाकर ही
मेरे दोस्त –
नया इतिहास बना पाओगे।

माँ ने कहा था

मेरी माँ कल भी जिन्दा थी
आज भी जिन्दा है
कल भी जिन्दा रहेगी
और हर जन्म में मुझसे
यही कहेगी
देखो –
काम से मुँह मत मोड़ो
धागे से धागा
और रस्सी से रस्सी जोड़ो
और सुनो –
कुछ भी हो जाय पर
अपनी मजदूरी भी मत छोड़ो
नर्मी तुम्हारे जिस्म में
खुशहाली बहेगी
मैंने बहुत कुछ
छुपाया है उससे

मगर साथ ही
क्या-क्या
नहीं बताया है उसे
उसने कभी बुरा नहीं माना
और आज तक भी मुझे
बच्चा ही जाना
मगर हर रोज
नई सुबह का गीत
सुनाया है उसने।
बिती हुई गली की दोपहरी से लेकर
शहर में हुई सुनहरी संध्या तक
अंगुलियों पर गिनाया है उसने।
मैं बहुत कुछ
भूल गया हूँ
मगर उसे सब कुछ याद है
कितने दूध मुँहे
जवान होकर
बड़े आदमी बन गये
और कितने ही
नेक परिवार
आज तक बरबाद हैं।
वह कुछ भी
नहीं भूली है
मेरी माँ
कल भी जिन्दा थी
आज भी जिन्दा है
कल भी जिन्दा रहेगी।

□

मानवता के दुश्मन

यौद्धिकता को
हथियार बांटते हुए
उसने कहा
यह युद्ध तुम्हें लड़ना है।
दूसरों के लिए नहीं
खुद के लिए मरना है
यौद्धिकता ने आकार लेते हुए
अपने में संपूर्णता का
बोध लिए, मुट्ठियाँ कसे
दाँत भींचे
सामने के पड़ाव की
दूसरी यौद्धिकता पर
गोलियाँ दाग दी।
मैं दूर खड़ा
करीब से इस
प्रहसन्न को देखता रहा।
अब उधर से
धाँय-धाँय की आवाज से
मेरे कान गूँजने लगे
यह क्रम लगातार
प्रतिस्पर्धा बना रहा
दोनों ओर पूरे आकार वाली
यौद्धिकताएँ थी।
हथियार पी. सी. सरकार की तरह
अपना जादू दिखाते रहे।
आवाजों के बीच
धुँआ ही धुँआ था।
कभी-कभी सहसा ही
दोनों ओर से अनेक
कराहनें की आवाजें आकर

वातावरण को और बोझील
बना देती
लगता फिर हथियार से
हाथ छूट गये हैं
लेकिन फिर तभी
मैं अहसासता
कि कोई दूसरी तेज पकड़
हथियार पर आ बैठी है
यह क्रम दोनों ओर
सत्तारूढ़ था।
मैं नहीं जान पाया
कि एक बौद्धिकता
अपनी ही बिरादरी की
दूसरी बौद्धिकता की
जान लेने पर
क्यों उतारू है ?
यह सब देखते हुए
धीरे-धीरे प्रहसन के
कई अंकों के बाद
मेरी निरन्तरता टूट गई।
और न जाने कब
बेहोश हो गई
मेरी बौद्धिकता ?

जान की कीमत

न ईसा, न बुद्ध
न नानक, न गांधी पर
मुझे विश्वास रह गया है
कॉलेज के छात्र संघ का
एक सक्रिय बालक
अभी, अभी ये बातें
मुझसे कह गया है।

मुझे लगा है कि फिर से
एक सुनहरा भविष्य
भागते-भागते
अविश्वसनीयता के बीहड़ों में
खो गया है।
कौम-
धर्म मानती है तो
इंसानियत-क्यों नहीं पहचानती !
क्या चिड़िया
'बुलबुल' की जान की कीमत
नहीं जानती ?

मोम के पाँव

दरख्त दर दरख्त
शंकाएँ
पक्षियों को भी
भय हो गया है
घर कहाँ बसायें।
नीम की टहनियाँ अब
स्वास्थ्य प्रद नहीं रह गईं
आस्थायें, शालीनता, शिष्टता
बच्चों की तरह
या फिर
बेसहारा जानवरों की तरह
बाढ़ में बह गईं।
और हम कहने लगे हम
बड़े हो गये-मगर
सत्य वह नहीं
यह है कि हम
मोम के पाँव लेकर

गर्म चिलचिलाती
धूप वाली रेत में
खड़े हो गये
और हम कहने लगे
हम खड़े हो गये।

जागती आँखें

और उसने
तेज चलते हुए
रुक कर कहा
सुनो –
अब तुम्हें तेज चलना है
बहारें सिर्फ बहारें ही नहीं होतीं
रोशनी भी होती है
चमन-चमन महक उठता है
बहारों की रोशनी से
उसी तरह
आदमी, आदमी का हृदय भी
जगमगा उठता है
उसी बहार की तरह
उद्देश्य के पथ पर
संघर्षों की लौ से
स्वयं के अंतर के गहन
आकाश में
रोशनी सिर्फ
चरागों से नहीं होती
और भी होते हैं मुकाम
रोशनी के लिए
झूठ से लड़ना
एक बड़ी बात होती है
मगर

सच्चाई के आमने-सामने
होना
उससे भी बहुत बड़ा हौसला
और फिर सुनो
मुझे अपने आप से
बहुत प्यार है
और जो अपने आप से
(सब की संपूर्णता के साथ)
करीब का रिश्ता रखता है
वह सबके भविष्य को
तिलक लगाने का
अपनापन लिये होता है
फिर से एक बार
बार-बार
अखंडित निरंतरता लिये
तुम और मैं, मैं और तुम
सभी में ऐसा विस्तार
विस्तृत रहे
और यही तेज रफ्तार
उसी मुकाम की
एक बुलन्दी का सपना है
आगे और तेज
चलते हुए
और यह सपना
नींद का नहीं
जागती आँखों का
सपना है
जागती आँखों का
एक अटूट विश्वास है
मेरा और तुम्हारा
तुम्हारा और मेरा
(सब की संपूर्णता के साथ)
□

सच के इर्द गिर्द

बुद्ध न जाने अकेला होकर भी
वन्य जीवन में कैसे शांति पा गया
लगता है
घर और समाज के रिश्तों से
उसे हिचक हो गई होगी
शायद है
ऐसी ही कोई कमजोरी उसे
जंगलों में ले गई होगी
पत्ते दर पत्ते
दरख्त दर दरख्त
घूमते हुए उसने कहीं
बरगद या उसके अनुसार
पीपल पर लिया होगा
और वहीं बैठकर
ध्यानस्थ उसी मुद्रा में
जीवन को जन मुक्ति से अलग
अपनी धुन में खामोश रह
गा लिया होगा
और वहीं समुदायिक अपनत्व भरे
घर जीवन को
बोधस्य बना
बुद्धता को प्राप्त कर
जैसा कि-
इतिहास बताता है
सावली परतों के सौंदर्य में
अपनी तृष्णा के
वास्तविक मुग्धमयी
रुप राशी में
जाति बोध छोड़कर

जल ग्रहण कर लिया होगा
और इसी तरह
अनेक कथाओं के बीच
बुद्ध ने बौधम्य को
पुर्नजीवित कर
बुद्ध की परिभाषा
आख्यायित कर
बुदध का स्वरुप
ग्रहण किया होगा
और इसी तरह इन आवेगों में
जनजीवन को अपने परित्याग का
छलावा देकर बुदध
लगने लगा होगा
और जनमानस में बौद्धित्व
इसी स्वरुप में जगने लगा होगा
यही होगी
वास्तविक बुद्ध की कथा
पर अब भी न छूट पाया
जन-गण-मन
उसे अब भी सालती है
जीवन की व्यथा।

विषैली नदी

नदी के बीच
फिर घिर आयी है
नॉवे –
लगता है
फिर नदी हिंसा पर
उतर आयी है
खो दिये है

तटों ने संयम
विकलांग हो गई है
सारी सुरक्षायें
जीते जी हम
दूर खड़े उच्चाइयों से
देख रहे हैं
नदी का बीहड़पन
जल का आक्रोश
और भयाग्रस्त हुए
महसूस रहे हैं
न जाने कौन से क्षण
हममें से भी
यह नदी गुजरेगी
किन्तु फिर भी
संदेह घना हुआ है
हमें अपने जीवित रहने का
यह नदी
सिर्फ प्रकृति प्रकोप
वाली ही नहीं है
यह नदी है
हमारे अपने दुराचारों की नदी
यह याद है
हमारे अपने
निर्मम अत्याचारों की
पिशाची भावनाओं की
एक दूसरे को
निगल जाने की घृणित
कुकर्मी, दगाबाज
अमानवीय और
निष्ठुरता की
दुःसाहसी नदी का
आवेग

उस नदी से
ये नदियाँ अधिक
द्रोही व विषैली
और जानलेवा नदियाँ हैं
और हैं मानवता के
माथे का
घिनौना कलंक
इन नदियों को
जब तक हम
संयम के तट नहीं सौंपेंगे
विश्व में कैसे
सुख और शांति का
ध्वज रोपेंगे।

मर्यादा

मेरे ऊपर के कमरे में
एक बुढ़िया रहती है
वह सभी को
रोजाना
बीच में टोक-टोककर
कुछ न कुछ
कहती है।
मेरे ऊपर के कमरे में
एक बुढ़िया रहती है
लोग सुनकर भी
उसका कहा
अनसुना कर देते हैं।
न सुनने की उपेक्षा से
वह गुस्से में लाल हुई
और अधिक

बूढ़ी दिखने लगती है
न कोई उसे सुनता है
न कोई उसे
देखता है
और न ही कोई
चाहता है उसे।
टूटे संयम
बिखरा आदर
विषैला व्यवहार
टूटता अपनापन
गलते उठते पाँव
अनैतिकता में संलग्न
अंगुलियाँ
दरपनों में जगमगाती
कृत्रिमता युक्त
बेहया शर्म
और भी न जाने क्या-क्या
उसे नहीं सुहाता है
उसकी आँखें रोज
लाल पीली होती हैं
उसका सारा दिन
यों ही चिंताग्रस्त
ढह जाता है
और फिर
कुछ लकीरें
और उसके चेहरे पर
उभर आती हैं
और बाँट देती हैं
कुछ और नया
बुढ़ापन
उसकी मर्यादायें
रोज चीखती चिल्लाती हैं

धीरे-धीरे
संध्या का अंधकार
उसे संज्ञाहीन
बना देता है
अब वह चुप है
कुछ भी नहीं कहती है।
मेरे ऊपर के कमरे में
एक बुढ़िया रहती है
जिसकी कोई नहीं सुनता
वह रोज
सबसे
कुछ न कुछ
कहती है।

कल के लिए

एक वह विफल मन
जो मर्यादाओं को ढूँढ़ता हुआ
मेरे पास आ गया हो
कैसे मैं उसे निराश कर दूँ ?
अनेक मजबूरियों के बावजूद भी
मैं उससे मुँह नहीं फेर सकता
कहीं जाकर तो
निबाह करना ही पड़ता।
दूर के भोगे हुए क्षणों को
अब कहानी बनाने से
क्या लाभ ?
अपयश के भय से
उत्साह को कर्मठता से
अलग नहीं किया जा सकता
धार कितनी भी गहरी धार हो
वह बिना उपयोग

प्रमाणिकता नहीं पा सकती ।
आगत का स्वागत ही धर्म है
फिर कैसे साथ छोड़ा जाए ?
रुककर, मुड़कर या बैठकर
चलने की गवाही नहीं
दी जा सकती ।
तो फिर क्यों न हो जाऊँ मैं
उस भंगिमा के, मुद्रा के
मर्यादित कौशल के साथ ।
हां यही ठीक होगा,
फिर एक दिशा ध्वज दे देना है ।
भय ग्रस्त निर्जीव पौरुष को ।
आज मैं
हर बंधन से मुक्त हूँ
क्योंकि मैं फिर
गति के पहियों के साथ
गतिमान हो गया हूँ ।
मैंने आगत का स्वागत किया,
सिर्फ कल के लिए
नये और खिले हुए
भविष्य के लिए ।

वक्त के आइने में

लौट के बहारें
और मौसम
दोनों आते हैं
मगर बीती हुई बात और
गुजरा हुआ वक्त वापस नहीं होते ।
अंदेशे, तसल्ली के लिए होती हैं
तहजीब और जिन्दगी के लिए नहीं ।

आइने टूटते हैं
और बदल जाते हैं टुकड़ों में
मगर यादें
टूटकर भी बदलती नहीं।
तुम्हें खुमारी का अंदाजा
सुबह की किरणें देगी
मगर मुझे रात का
अंधेरा अभी सता रहा है।
नींद के टुकड़े हजार बार होते हैं
मगर आदमी के टुकड़े
बार-बार नहीं होते
इंसानियत चल के आती है
और शैतान को लाया जाता है
मैं शैतान नहीं इंसान हूँ और
हमेशा, हर जगह इंसानियत की
बात करता हूँ, करता रहूँगा
मेरे इरादे बदलते नहीं हैं और
तुम अपनी औकात
अक्सर भूल जाते हो
तुमने ठहरे हुए पानी में
तस्वीर देखी है और मैं
चलते हुए पानी का
तलबगार हूँ।
वक्त के आईने में रख के
मुझे मत जाओ, मुझे
देखो और
मेरे करीब आओ।

□

गुलाम चौराहे

हर चौराहा
गुलाम बन गया है
गली की चमचमाती
किसी ऊँची इमारत का
अब राहगीर गली से
अपने मन चाहे
मोड़ नहीं मुड़ सकता
पूरी गली का सत्ताधारी
अब जब तक उस
ऊँची इमारत से बैठा
कोई निर्देश
नहीं देता तब तक
चौराहा राहगीर को
रोके रखता है
इमारत की खिड़कियाँ
पारदर्शी नहीं है
किन्तु चौराहा
सत्ताधारी को
आसानी से देख सकता है।
हर गली में
कोई न कोई
ऐसी ही एक
बड़ी इमारत है
जो चारों ओर से
सुरक्षित है।
बाहर की कोई भी
आवाज़ें
इन इमारतों में
प्रवेश नहीं पाती
मुट्ठी भर लोगों ने

मिलकर
हर गली में
यह साजिश की है
कोई भी अब
अपने को उनसे
मुक्त नहीं कर पाता है
इमारत का सत्ताधारी
जैसा भी निर्देश
चौराहे को भेजता है
चलने वाले को चौराहा
मजबूर करता है
अनइच्छाओं की
पगडंडियों पर चलने के लिए
अनचाहे मोड़ मुड़ने के लिए
चौराहा भूल गया है
अपना अस्तित्व
और आ गया है
उनके बहकावे में
उसे कौन समझाये
की इन रास्तों का
असली शाह वहीं है।
इमारतों में बैठा
सत्ताधारी नहीं।

मै नमस्कार करता हूँ

मेरी कविताएँ
विखंडित नहीं होतीं
इंग्लिश के वर्क की तरह
और हिन्दी के कार्य की तरह
उस समय

भापाओं को भुलाती हुई
मेरी भुजाएँ
अपना अलग-अलग
आधीपत्य होता है
मेरे साहस का अखंडित दांपत्य
जिसे एक सती होने का नही
एक विश्वस्त
भारतीय नारी का
सम्मान मिला होता है।
जो शब्दों को
अर्थ और अर्थों को
तुलसी का समन्वय प्रदान करती है।
मैं घिरा तो हूँ
कितनी ही बार काले मेघों से
किन्तु मुझे
हर बार अहसास रहा है
बादल की गर्जन का
और सर्वथा
निर्भीक बरसते पानी का।
मैं चल अविचल हूँ
लघु हूँ
या महान हूँ
किन्तु समाया हूँ
कण-कण में
घन-घन में
वारिद के प्यासे
धरती के बेटे किसाने के
मन-मन में
मुझसे कोई
मेरा अपनापन
छिन नहीं सकता
मैं ध्वज हूँ

हवा चले
कि न चले
फहराता हूँ
और कैसी भी उलझन हो
आदर्शों को
संकल्पों को लिए हुए
लहराता हूँ।
मुझसे कोई बंधन
जब भी टकराता है
साहस की लालिमा देख
झुक जाता है।
और मैंने करवट भी बदली है
बदली है सीमाएं किन्तु
आज तक तोड़ नहीं पाया
मैं अपने सिद्धान्तों की
लक्ष्मण रेखाएँ।
मैं नमस्कार करता हूँ
हर उस प्राणी को
मधुरिमा बाँटी है जिसने
हर वाणी को।
मुझमें विलीन
जाने कितने सत्य
कहानी कहते हैं
मेरे अंतस के
सुख-दुःख
चुपचाप अश्रु पी लेते हैं।
लहरों सा मेरा मन भी है
उच्छृंखल
मैंने भी
जाने कितनी बार तटों को लाँघा है
किन्तु बाद में
मैंने सिर्फ यही जाना है

कि वह
और नहीं कुछ
मेरी आत्मश्लाघा है
जीवन तो सबके हित में
जाने कितनी साँसे है
फिर क्यों हमने
मन चाहे पलटे पासे है ?
क्या तोड़ सका कोई
सागर की मर्यादा
या फिर
किसने सूरज को गोद बिठाया है
बतलादे चंदा को
किसने कहाँ छुआ ?
या कहीं पर
हुआ है कोई चित्रकार ?
जो कह दे सच्चाई से
मैंने अपने रंगों से
इन्द्रधनुष मिटाया है।
मैं तो मानव हूँ
मानवता को शीश झुकाता हूँ
इसीलिए जीवन के
अनुपम रंगों की सच्ची सार्थक
कविताएँ सुनाता हूँ।

मेहनत का रथ

हाँ मैं खोज लाया हूँ।
तुम्हारे लिये
एक ऐसा ही पथ
जिसपे चलता है
मेहनत की साँसों का रथ।

तुम चल सकते हो
तो आओ और विश्वास को
कांधे पे बिठा लाओ
आओ–आओ
रुकना नहीं है
किसी भी चुनौती के समक्ष
झुकना नहीं है
उन्हें तोड़ दो जो रुकावट बने
मन में साहस भरो
पांव आगे धरो
ये चलना ही
तुम्हारी सुबह का
नया गीत होगा
नयी ज़िन्दगी का
नया मीत होगा।

ध्यानस्त हुआ

भूतकाल ने मुझे
दिशाएँ दी है
वर्तमान ने, प्रेरणाएँ और उमँगे
मैंने भविष्य को
आत्मसात किया है
साहस, निष्ठा और लगन से
इन सभी के बीच (तीनों काल के)
कुछ अठखेलियाँ
होती रही है
जिन्हें मैं
जानबुझकर
अब तक अज्ञानी न होकर भी
शिशु की तरह,

देखता रहा हूँ।
समझ में आते-आते
फिर कहीं कुछ
अमुर्तता से घिर जाता है
न जाने कौन है जो
मेरी समझ के बीच
शिखंडी बनकर आता है
मेरे पाँव बेतहाशा
चलने की ललक लिए
उन्हें देखकर
उन्हे समझाकर
होते न होते
चलने को
विखंडित हो जाते हैं।
और तब
पैदा हो जाती है
आशंकाएँ।
आशंकाएँ वो
जो आज तक देखी गई है
बुरी नजरों से
पर तभी जब मैं
ध्यानस्त हुआ देखता हूँ
तो मुझे
सामने दिखाई देता है
कहीं का भी कोई
लक्ष्मी पुत्र।
मैं कैसे कह दूँ कि
मुझे किसी अलग से
मापदंड की इच्छा है।
अथवा भेंट होनी है
मापदंड
अलग तो

कहीं भी नहीं होता
किन्तु आजकल उसकी
भावनाएँ
आधुनिक चोर
सिपाही और साहुकार की तरह
होने लगी है

स्वप्न

कर्म के अधरों पर
बिछा दो
कुछ सतरंगे स्वप्न
कुछ खड़े
कुछ बैठे, कुछ तिरछे
शायद है–
वे किसी दिन
अवश्य ही–बोलने लगे।

परिवेश

सुसंस्कारों
श्रेष्ठ संस्कृतियों की
उत्तर काशी
तुम्हारा–
जन्मस्थल है
यह बताते हुए तुमने
उस दिन
अपना परिचय दिया था।
पर आज
तीस वर्षों के बाद
यह मानना संपूर्ण रूप से

शंकाग्रस्त हो गया है
कि तुम–
उसी जन्मस्थली
और
उसी भाव भूमि के हो।

पछतावे, तर्क और अन्धियारा

रेत पर
रेत की परतों में
फर्क क्या है
हमारी तुम्हारी शर्तों में
हर क्षण
आकाशवाणी नहीं होता
इसीलिये मेघों की गर्जन में
हर बार पानी नहीं होता
अपने सूरज को
जगाकर रखो
क्योंकि अधियारे का कोई
सानी नहीं होता
अपने ही भ्रमों की छाया से
लिपटे संदेशे
मत भेजो
अरे ओ अहम के
टूटे हिम खंडों
अपने से अपने को मत काटो
मानो
और मत बाटों

घर की बातों का पछतावा
चाहे जहाँ
मन चाहे तर्कों में
रेत पर, रेत की परतों में
फर्क क्या है
हमारी तुम्हारी शर्तों में।

शुद्ध बुद्ध या क्रुद्ध

शुद्ध स्वरुप में
जब कभी
हिमानी आत्मा से
विचारों की सलिला बही है
तब-तब किसी ने मुझे
पौधों से लेकर
दरख्तों तक की
याद वाली बेरहम कहानी
कही है।
मेरी आवाज
इस छोर से, उस छोर तक
दूरदर्शन की तरह नहीं
पदयात्रियों की तरह गई है।
मैं सब कुछ सुनकर
अवलोकन के पश्चात्
संधि स्तंभों को
तोड़ता हुआ
लावे की तरह
पिघल गया हूँ
और फिर
सूखे की चपेट में आकर
अपनी विषाक्त शून्यता लिए

दर-दर क्षुद्ध बना
घूमने लगा हूँ।
सत्य की इन
स्वीकृतियों के बीच
खामोशी और संयम के
इकहरे दुपट्टे को लपेटे
कहीं भी, कभी भी
स्थिर होने में
असक्षम रहा हूँ।
आत्मा, कर्म और बटोही के
इस आख्यान में
नहीं जानता
मैं अपने को-
शुद्ध कहूँ, बुद्ध कहूँ
या फिर क्रुद्ध बना रहूँ।

विवशता

तुम त्रिशुल की तरह से हो
इससे कोई
इन्कार नहीं करता
किन्तु यह जगत
विध्वसंक से
प्यार नहीं करता
ममताएँ तुमने ही नहीं
वक्त ने भी मारी है
यह तो—
घड़ी बताती है
कि कब किसकी बारी है
तुमने लगाम तो
संभाली है

पर मैं यह–
कैसे कह दूँ
कि यह सम्मान है या गाली है
तुमने मुर्दों को
जन्म दिया है
और जिन्दों को मारा है
कौन जाने यह तुमने
कौन सी
इंसानियत को सँवारा है
लेखकों से लेखनी
वक्ताओं से भाषण
और कवि-शायरों से
कलाम छीन लिए हैं
अपने- अपनों से
भाई यारों से
सलाम छीन लिए हैं
तुम आओ मेरे साथ
तुम्हें ईदगाह
दिखाता हूँ
तुमने बातों को
बातों की तसल्ली दी है
मगर लगता है
आवाम को महज
एक टूटी हुई दिल्ली दी है
रुक के साँस
लेने को जी करता है
इंसान तो इंसानियत के
लिए मरता है
तुमने अपनी जीत
गरीबों के पेटों में देखी है
और देश की गद्दी
सिर्फ अपने बेटों में देखी है

कौन सा टुकड़ा है, (देश का)
जहाँ तुम्हें जाना नहीं है
देश के कौन से
हिस्से में तुम्हें
आना नहीं है
यह भी मालूम है कि तुमने
दुश्मनों को पाला है
और यह भी
ज्ञात है कि तुमने
कितने उत्साह और
कितनी देर में
आखिर कौन सा तख्त
संभाला है
जब कभी भी
जी में आयें, बांग दे
वह मुर्गा नहीं है
अब विधाता
सिर्फ तू ही
मेरे देश की
दुर्गा नहीं है।

एक किसान का बयान

डूबते सूरज को
कोई नमस्कार नहीं करता
हाथ उठते हैं
निकलते हुए सूरज की तरफ़
रौंदे हुए फूलों से भी
खुशबू खत्म नहीं होती
सुना है
आदमी मर जाता है

पर आत्मा नहीं मरती
तेल तिलों से ही नहीं
महुवे से भी निकलता है
और आजकल सांप
विना विलों के भी निकलता है
मुस्कराहट
ढूंढ़ते फिरे सारे शहर में
और होंठ भी हिलते हुए
न देख सके
अपने घर में
उन्होंने तो
बच्चों के जन्म दिन पर
शहर भर को बुलाया
हम–
रेवड़ी भी न बांट सके
अपने बच्चे के
जन्मदिन पर।
कानून किताबों में कैद था
लाशें सड़कों पर लावारिस थी
हम खेत में व्याकुल
बरसात का इंतजार करते रहे
मगर–
बंगलों की तिजोरियों में
अनचाहे काले धन की वर्षा थी।
ये मेरे दुख का
डंका नहीं है
हिन्दुस्तान की
असली तस्वीर है ये
हर एक कौम की
अस्सी फीसदी
लोगों की तकदीर है ये
सुंदरतायें–

मन तो हुलसीत करती है
लेकिन
पेट नहीं भरती है
इसीलिए–
भावुक कवियों की
कल्पनाएं मरती है
भाषायें अलग होंगी
और वेश भी बदलेंगे
पर माँ न कभी बदलेगी
और देश न बदलेंगे।

धर्म के नाम

सारी तमिस्रायें आकर
तुझमें
विलीन हो जाती है
और एक उत्तेजित
आक्रोश प्रभा लिए
फिर एक नया सूरज
निकल आता है
कहीं नाभि से
एक प्रश्न
संशायें उछालती है
और–
कपटी इंगितों के बीच
एक नई सफेद चादर
आस्थायें–
निःसंकोच बिछा देती है
अब भी पहरा
पहरा तो है मगर

पहरेदार
पहरा और अमिन है
इनमें से जब भी कोई
गूंज लौटकर आती है
एक सच्चाई
फिर मर जाती है
या धुंधलाती है
और यही क्रम
अनवरत–
संज्ञाहीन हुआ
धर्म के नाम
निरन्तरता लिए हुए है।

अब मुझे

अब मुझे
गैस का रिसाव तो
नहीं रोक सके।
और रोकने चले है
वासंती हवाओं को
प्रकृति किसी की
गुलाम नहीं होती
अथ, कोशिश
कभी नाकाम नहीं होती।
उस पर 'दारा' से लेकर
'दाऊद' तक के
अच्छे या बुरे
इंसानों का
मनचाहा नहीं चलता
बेखौफ होती है
संस्कारों की सरिता

लोग बदल जाते है
लेकिन सच्चाईयाँ
नहीं बदलती
और इसीलिये
राजा की मनचाही
नीतियाँ नहीं चलती।

अलग होते हुए

निरन्तरता ही मेरी
सत्ता है
और संघर्ष ही
मेरा त्यौंहार
अतरगतायें स्वार्थ के बोझ से
टूट जाती है।
फिर उस पर
नया मकान तो क्या
नई दीवार भी
नहीं बनती।
सहजता और धीरज ही
माँ, बेटी, बहन और
पत्नि के--
स्वरुप को प्रगट कर
स्थाईत्व प्रदान करती है।
उम्र अपने –
भूतकाल को
कभी भी वर्तमान में
स्थान नहीं देती।
सम्मान नहीं देती
वह भूल जाती है भौगोलिकता
भूगोल या इतिहास

नया न हो
फिर भी–
संदर्भ उसके स्थाई और
मूल्यवान होते है।
अक्षरों को बदला
जा सकता है
लेकिन वास्तविकता के अर्थ
बदलते नहीं है।
तुम–
जब भी अपने को
पहचानोंगे,
कोई दूसरा सहयोगी होगा
और बतायेगा
भूत से वर्तमान
एवम् भविष्य को।
कोई भी उधार
संघर्ष की लिखावट नहीं
अकर्मण्यता की कहानी है।
जिन्हें अहं और
द्वेष के दर्प से
मुक्ति नहीं मिलती
वे–
धर्म से
विलग हो जाते है
स्वयं से भी अलग होना
इसी को कहते है।

अप्रतिम कलाकार

टूटे हुए बेवश-बेकश
सपनों को
बहुत टेढ़ी खीर है
राम बना पाना
इतिहास के नये पन्ने
और युग बदलने की
क्षमताओं में
महाभारत बन
विजय पताका फहराने
की मुदित-आलोकित
तस्वीरों के समान।
बड़ा मुश्किल होता है
सब कुछ टुकड़े-टुकड़े हुए को
फिर से जोड़ना
और बना देना वही-वैसा ही स्वरूप।
और जो ऐसा कर गुजरा है
वही बना है
इतिहास
वही बना है राम
और बना है
टूटे हुओं को जोड़नेवाला
अप्रतिम कलाकार।

□

लालटेन, डिग्रियाँ और देश

लालटेनों में
अभी भी कैद है
जवान उम्र के
भविष्य की इबारतें।
काश कि-पुज्यनीय धर्म
कौम और देश की आजाद नस्लें
समझ पाती
लहुलुहान हो जाता है मन
हाथ फैलाते हुए
जिस्म
ताने कसने लगता है
पसीने को
कुछ भी नहीं कर पाता
विश्वास, निष्ठा, श्रम
बिना सिफारिश के।
लाल चेहरे भटक रहे हैं
डिग्रियाँ लिये हुए
पहले डिग्री लेने का दुख झेला
लालटेनों के
निर्दयी अंधेरों
और फीस न भरने की
विवशताओं के बीच
और फिर
डिग्रियाँ ले भी ली तो
वही लालटेन, वही अंधेरा
वही दुःख
नही जानता
यह मैं हूँ
या मेरा आजाद देश
डिग्रियों के बीच।

□

अमानुष न हो सका

मैंने शेर के मुँह से भी
निवाला छीना है।
पर किसी राजा (आधुनिक) का
सिपेसालार नहीं बन सका
निरन्तर अपने बलबूते पर
चलता ही रहा।
सह न पाया मैं कभी
बदली हुई भाषायें
मैं बदज़ुबां भी हुआ
पर अमानुष न हो सका
इस तरह
संघर्ष की राह पर
सत्य की
खोज करते हुए
मैं जिया
फिर जिया
जीता रहा।

पतंग काटते हुए

हाँ यह ठीक है
और बिल्कुल सही भी
कि मैं
कटी हुई पतंग के साथ
नहीं गया
क्योंकि मुझे पतंग
लूटने से
जो खुशी होती है
उससे कहीं ज्यादा असीम

दुःख होता है,
पतंग के कट जाने से।
और मैं यह भी जानता हूँ
दो चर्खियाँ जब भी
पतंगों से
आसमान नापती हैं
कभी फलक तो कभी
धरती काँपती है
कि मेरा हिस्सा
कहीं से भी दो
(दोषी बनते हुए)
पर इन्हें कौन समझाये
इस लड़ाई में
आसमान, हवा, धरती
गुनहगार नहीं
ये तो गुनाह है
हम बाजीगरों का
पतंगों के साथ ही नहीं
मनुष्य और मानवता के संपूर्ण
व्यक्तित्व के साथ
छोटा या बड़ा
उम्र से, शिक्षा से, योग्यता से नहीं
सिफारिशों से
संबंध जोड़ दिया गया
और इस तरह
शिक्षा और योग्यता को
तोड़ दिया गया है
एक दूसरे की पतंग
काटते हुए
चर्खियों के बीच।

☐

बोधमय

दोस्ती का हाथ बढाते-बढाते
कहा भाग रहे हो
लगता है नींद में सोते सोते
जाग रहे हो
क्या अभी बोधमय
टूटा नहीं है
जैसे भिखारी के हाथ से
बोद्ध बनने पर भी पैसा
छूटा नहीं है
सिर्फ धन बटोरकर
कोई धनवान नहीं हुआ है
पेड़ को भला किस मौसम ने
नहीं छुआ है
क्या वह किसी भी मौसम में
अपने दिल से
धनवान हुआ है
शोभा औपचारिकताओं से
नहीं होती।
सच्चाई संभव है अपनी
आँखों से नीर बहाये
मगर अपने दिल से
कभी नहीं रोती।
इसमें ईसा भी है, राम भी
इसमें कृष्ण भी है, गुरू नाम भी
इसमें बुद्ध भी है, रहमान भी
फासले होते नहीं
पैदा किये जाते है
मगर चलने वाले
अपनी मंजिल खुद
अपने पास ले आते हैं।

□

समय की सार्थकता

समय की सार्थकता
समवेद, समाधान न सही
किन्तु सृष्टि सृजन,
सुरुचि, समवेता अवश्य है।
एक ओर मूल्य की मानसिकता
मांसाहारी है
तो मनुष्य की मनचिता
शाकाहारी भी है।
दृष्टि, दरपनों की दरारों के बीच
दरकती दयालुता है
तो कभी वही दृष्टि
दरिद्रता के दानवीय दरिंदों के दरम्यान
दैहिक द्रुतगामी
दानिश दावत भी।
नेपथ्य से आती आवाजें
अस्तित्व है भी
नहीं भी
बोध गया भी है
और गया बोध भी।
कभी कौरवी पिशाचता के बीच
कर्म की पांडवी निष्ठा
सार्थी के सर विजय मुकुट
सुशोभित किए हैं
तो कभी सम्पूर्ण युद्ध विराम के
तुंग शिखर से बहती
संतोष सार्थकता की
मृगजली सलिला है।

☐

त्रिनेत्री-मुद्रा

सत्य नहीं छुपता
अवरोधों से
झूठ प्रसव की गोद बैठता
बार-बार।
हे वत्स!
यात्रायें इन्कलाब नहीं लातीं
इन्कलाब तो
खून की सक्रियता का
विस्तारित प्रतिफल है।
उत्सव तो कहीं भी हो,
कोई भी हो–
अपना ही होता है
दिगभ्रमित मत करो
लाचारों को।
परमसुख की
परिकल्पनाओं मे
मत बनो विषधर
काले नाग
कंस और रावण भी नही
कौरव भी मत बनो
व्यर्थ होगा यह सब बनना
क्योंकि
सत्य के गाडीव का
सारथी बना अर्जुन
हरक्षण जीवित है
वही हर बार
परिवेश को
सम्पूर्णता प्रदान करता है।

अरवी री पीठ पर/

अब भी समय है।
विस्मृतियों को सक्रियता
संयम बांटो
धर्मों से तय है कि
विध्वंस नहीं छोड़ेगा तुम्हें
क्योंकि यह निर्णय लेने में
बड़ा क्रूर है
मैं रहूँ या ना रहूँ पर
सत्य निरन्तर
दिखाई बन
त्रिनेत्री मुद्रा में
ताण्डव रत रहेगा
और कहेगा—
सत्य ही था, सत्य ही है
सत्य ही रहेगा।

झूठा बयान

कि कुछ भी नहीं टूटा है
जो भी तुम सुन रहे हो
वह झूठा है।
पर आश्चर्य है कि
फिर भी तुम ज्यों के त्यों
वहीं, वैसे ही
बने हुए हो।
जब कि
हवा भी है,
आग भी है और
अंधकार भी।

कृष्ण या कंस

हाँ उसमें कभी कृष्ण
कभी कंस पैदा होते है
शरीर है, जिस्म है, भावना है
विचार है, इंसान न सही
आदमी सही, उसमें अलग-अलग
वक्त में, विलग-विलग
भावनाओं के विचार वाले
अच्छे या बुरे आकार पनपते है।
उनमें से कोई
दुनियाँ भर की दुत्कार,
और कोई दुनियां भर का
प्यार लेते है।
इससे सवाल खत्म नहीं होता
और बढ़ जाता है
इन उत्तरों के बीच लगता है
अंधे के सर पर सूरज
चढ जाता है।
जिसे सिर्फ गर्मी का अहसास है

अब भी समय है।
विस्मृतियों को सक्रियता का
संयम बांटो
वर्ना ये तय है कि
विध्वंस नहीं छोड़ेगा तुम्हें
क्योंकि वह निर्णय लेने में
बड़ा क्रूर है
मैं रहूँ या ना रहूँ पर
सत्य निरन्तर
विषपाई बन
त्रिनेत्री मुद्रा में
ताडंव रत रहेगा
और कहेगा—
सत्य ही था, सत्य ही है
सत्य ही रहेगा।

झूठा बयान

आवाज तो जरूर
कुछ टूटने की थी
और तुम कहते हो
कुछ भी नहीं टूटा है।
पर मुझसे
मेरा मन
बार-बार कहता है,
यह बयान-झूठा है
यह बयान झूठा है।
हर बार तुम
कुछ न कुछ
अन्दर तक तोड़ते रहे हो
और देते रहे हो
यही बयान

कि कुछ भी नहीं टूटा है
जो भी तुम सुन रहे हो
वह झूठा है ।
पर आश्चर्य है कि
फिर भी तुम ज्यों के त्यों
वहीं, वैसे ही
बने हुए हो ।
जब कि
हवा भी है,
आग भी है और
अंधकार भी ।

कृष्ण या कंस

हाँ उसमें कभी कृष्ण
कभी कंस पैदा होते है
शरीर है, जिस्म है, भावना है
विचार है, इंसान न सही
आदमी सही, उसमें अलग-अलग
वक्त में, विलग-विलग
भावनाओं के विचार वाले
अच्छे या बुरे आकार पनपते है ।
उनमें से कोई
दुनियाँ भर की दुत्कार,
और कोई दुनियां भर का
प्यार लेते है ।
इससे सवाल खत्म नहीं होता
और बढ़ जाता है
इन उत्तरों के बीच लगता है
अंधे के सर पर सूरज
चढ जाता है ।
जिसे सिर्फ गर्मी का अहसास है

सूरज और
उसके स्थान का नहीं
बुलंदी के नाम का तो पता है
पर उसके मकान का नहीं
जिन्दा अंधेरे भी रहते हैं
मगर सूरज की
रोशनी की तरह नहीं।
सिर्फ बाहर ही मत देखो
अंदर भी झाँको
अपने अंतस में
कृष्ण या कंस को भी
मापो।
देखो कि वह कृष्ण है
या कंस
अपने आप
अपनी बात
समझ जाओगे
और मेरा दावा है
उस समय
कंस के गीत
नहीं गाओगे
सिर्फ कृष्ण को ही
शीश नवाओगे
यह फैसला हर बार
तुम्हें ही करना है।
अपने-अपने
अन्तस में
कंस या कृष्ण को धरना है।

□

आदमी और पेड़

रुक के सुन
कि बैठना मना है
यह देख, यह पेड़
किस तरह से तना है
पेड़ है इसलिये बैठा हुआ
लगता होगा
मगर सच्चाई यह है
कि यह हर एक
गतिविधियों से सना है
यह देख यह पेड़
किस तरह से तना है।
आपने कभी ध्यान भी
नहीं दिया है
कि पेड़ की
मानसिकता क्या है?
और उसकी सजीव,
सचरित्रता की
आवश्यकता क्या है?
यही शाश्वत प्रक्रियाएं
आदमी और पेड़ की है।
फर्क है तो
सिर्फ इतना
हिमालय से
चंबल की घाटी में जितना
एक की प्रमाणिकता
कराहटें हैं
एक ने श्लोक,
परोपकार के रटे है

हल्के या
भारी की बात नहीं
दोनों अपनी जगह डटे हैं
क्या कभी आदमी ने
पेड़ को आँका है ?
क्या कभी आदमी ने
अपने अंतर में झांका है ?
बाहर की रोशनी
अंदर का प्रकाश नहीं है
और इसलिए निर्दोष
आज का
मधुमास नहीं है।
कोई भी अंगुलियाँ,
अंगूठा नहीं है
और यह सत्य झूठा नहीं है
काश कि
आदमी पेड़ की तरह
गतिमान रहता
और परोपकार
की घाटियों में
भागीरथी बनकर बहता।

देश बीमार हो गया है

लगता है देश बीमार
हो गया है।
इतने हजार डाक्टरों में
एक भी योग्य अथवा
सुयोग्य नहीं जो,
विश्वविद्यालयों के

प्रमाण-पत्रों को
अर्थों में अंकित
कर सके।
भूख आदमी की नहीं
विश्वास की है,
इतिहास बनते हैं
बिगड़ते हैं
तलाश इतिहास की नहीं,
कहानी की है
प्यास पानी की नहीं
रवानी की है!!
पेट भूखा है
या देश भूखा है
खादी मनहूस है
या खेत सूखा है
किसी की कोई बात
राज नहीं बनती!
लगता है हथेलियाँ
रेखायें नहीं
अंगुलियाँ बदल रही है।
मैं किसी से कुछ भी नहीं पूछता
अपने आप से सवाल करता हूँ
नमक खाता हूँ
क्या पता
हराम करता हूँ या
हलाल करता हूँ
लगता है,
देश बीमार हो गया है!!!

□

माँ हीन, मजदूर का बच्चा

एक बाप, बच्चे को गोद में उठाये
आँखों में आँधी भर कर
सुबह के दिये हुये
शाम को लिये हुये
थके पाँवों से
अपनी झोपड़ी की तलाश में
किसी कच्ची मगर पक्की
खाई में खड़े होकर
पचास पैसे गिने
और गिलास थाम लिया
अंगुलियों को कसे हुये, ममता से
गोद के बच्चे की ओर
माँ की दुधिया याद में बढ़ा दिया।
बच्चा आँखों पर
मुट्ठियाँ घुमाते हुए
सूखे-अकाल ग्रस्त गाँव
की तरह
अपने गले को
महसूसते हुये-घूँट मार दी
मुझे लगा कि किसी ने
एक नहीं, हजार
बस्तियाँ उजाड़ दी।
देश, दूध से नहाता था
नदियों को पालकी में बिठाता था,
मेरी आँखों में
लाल-लाल
कुछ उतर आया था
एक मजदूर
बचपन को शराब पिलाकर
जवानी के सुनहरे सपने
देख रहा था।



याद

फिर हवा
ले तो गई
उड़ाकर मन
टेसू-गुलाब के घर।
पर मैं भूल न पाया
चौराहे की वह उदास
उत्सुक आँखों वाली
सहमी हुई गली।
पैंजनियाँ बाँधे-दहशत
चौराहे के सन्नाटे को
तोड़-तोड़ जाती थी
इस गुलाब से ज्यादा मुझको
उस गुलाब के
चेहरे पर अंकित विवशता
पुनः याद आती थी।

झाँकी

सुबह जो निकली
बिस्तर बांधे
गई खेत की ओर।
सहसा कैसे
चढ़ा हवा के
कांधे पर यह
मर्माहत सा शोर
मजदूरी के बदले पाये
आंसू के हिलोर।

खुलेआम
सबके सम्मुख यह
किसने तोड़ी
संबंधों की डोर।
विवशता नहीं गई आंकी
देखने सब आये झांकी।

बासंती-बयार

मुझे
बासंती बयार
बहुत प्रिय है।
यों हवाओं से मेरा
बचपन से
गुड्डियों और गुल्ली-डंडे के
खेल की तरह का
बहुत ही नजदीकी
साथ रहा है
हर मौसम की हवायें
मुझसे हर बार
मेरा पता पूछती रही है
पर मुझे
मई और उसके भाई से
न जाने क्यों
सुनते ही अथवा देखते ही
कोफ्त होती है
यह कोफ्त
मई और उसके भाई से नहीं
उन दोनो के आचरण से है
वे दोनों निर्मम
मेरी धरती की हरियाली को

ध्वस्त कर देते हैं
और
मुझे विध्वंस से नहीं
सृजन से लगाव है
मैंने हर बार
अपनी संपूर्ण
आत्मिक आहुतियों के साथ
ये प्रयत्न किए हैं
कि मई और जून
वर्ष के परिवार से
तलाकशुदा हो जाय
या फिर मैं उन्हें विलग देखूँ
अथवा वह अंग्रेजी काल
मैं भूल क्यों नहीं जाता !
मगर मैं हर बार
लगभग निष्फल रहा हूँ
और मैं ही नहीं
मेरे जैसा हर प्राणी
जो मेरी तरह अडिग है
अपनी कार्य प्रणाली में
वह भी इस कार्य में
निष्फल रहा है।
उससे भी आगे
मेरे चक्षुओं ने
यही अनुभव किया है
कि सारा विश्व भी
खामोश है—निष्फल है
प्रकृति के इस अनुशासित
विरोध में
इससे यह स्वयं
स्पष्ट होता है कि
मनुष्य

प्रकृति को तो
नहीं बदल सकता।
किन्तु प्रकृति से अलग रहकर
स्वयं बेजान बन सकता है
खामोश रह सकता है
और यह आभास
प्रकृति को नहीं
मनुष्य को बदलने के
अहसास का
प्रमाणिक परिचायक है।
स्वत यह सिद्ध है
कि प्रकृति न सही
मनुष्य इन्हीं वैचारिक
संकल्पों के आधार पर
बदला जा सकता है
हाँ-मनुष्य बदला जा सकता है।

वैज्ञानिकता

भूगोल बोलता नहीं है
और इतिहास से आवाजें आती हैं
आदमी की खामोशी धीरे-धीरे
उसी को खा जाती है
यह इतिहास और भूगोल की तरह
एक ठोस स्पष्ट वक्त विज्ञान की तरह है
विज्ञान जो धोखा नहीं दे सकता
और जान-बूझकर
किसी की जान नहीं ले सकता
किन्तु मैंने एक वैज्ञानिक को

दूसरे वैज्ञानिक की
जान लेते देखा है
क्या यही
वैज्ञानिकता के जीवन का
लेखा है।

अस्तित्व

मैं अपने गहरे छींटे
मिटा तो नहीं सकता
लेकिन पोंछ सकता हूँ
किन्तु क्या इस तरह से
मैं झूठ बोलकर
सच्चाईयों के झंडे रोप सकता हूँ?
मैंने देखा है।
मैंने समझा है, मैंने पढ़ा है कि
सहयोगियों के नाम से ही
गीता और महाभारत का
अस्तित्व है और रहेगा
झूठ का मौसम आयेगा
समय पाकर
वह ऊंचाईयाँ भी पायेगा
मगर मुझे ही नहीं
मेरी आत्मा को विश्वास है
कि झूठ हर बार
अपने आकार से
अपने वृत्त से टूट जायेगा
और सत्य ही अमरता पायेगा।

□

शहर की ओर

मुझे आते जाते
मत रोकिये
हो सकता है रास्ता आपका है
पाँव तो मेरे है
खेतों की सारी सरहदें
बेइमान जमींदारों ने
काबू में रख ली है
मगर ये पगडंडियाँ
ये गाँव तो मेरे है।
मेरे बाप का भी
खेत यहीं था
पूरे माप तोल से सही था
गिरदावरी भी
अब तक भरी जाती थी
और पटवारियों की
आवभगत भी की जाती थी
सूखा पड़ गया
मैं जमीन और अपने भाग्य से लड़ गया
मैं शहर की ओर दौड़ा
और अपने माँ-बाप को
बिना बेटे का कर गया
किन्तु एक दिलासा
उनके मन में भर गया
मुझे विश्वास भी नहीं होता
कि मैं –
शहर में आ गया हूँ
और खेत जाने के समय
रोटी न ले जाने की
भूल के बावजूद

पड़ोसी खेतवाले दोस्त की
आधी से अधिक रोटियाँ खा गया हूँ
उसे गुमान था कि
मैं उसके भाई से भी
बड़ा भाई बनकर
उसके खेत में आ गया हूँ
इस शहर में तो
मैंने सब कुछ खो दिया है
और खोई हुई चीज़ों को
याद कर
मेरा मन रो दिया है।

खुद के हाथ

खुद के ही हाथ
खुद के हाथों को नहीं
पहचानते हैं।
जब कि
वे स्वयं को स्वयं से
खूब जानते हैं।
चोर कभी भी अपने को
चोर नहीं कहता
फिर भी वह
एक दिन-साहूकार की नजर से
छुप नहीं सकता।
कई ऐसे चोर और
अपराधी भी होते है
जिन्हें कानून
चाहते हुए भी, कुछ नहीं कहता
पुलिस उनके
मातहत होती है

कानून उनसे भयभीत रहता है
फिर भी एक बहुत बड़ा हजूम है
जो उन्हें अपराधी कहता है।
उस दिन
उसके साथ
कोई नहीं रहता है।
उसका अन्तस उसे
चिल्ला चिल्लाकर
कहता है।
हाँ मैंने पहले भी कहा था
तुम नहीं माने
अफसोस की
जिन्दगी की असलियत को
नहीं जाने।
चोर बड़ा आदमी हो
या छोटा
चोर, चोर ही होता है
अंधकार–
सुबह होने पर रोता है।

आस्था

फिर तुम मुझमें
लरजने लगी हो
गंध मुट्ठियाँ बाँधे
दौड़ने लगी है।
पूरे उपवन में
हवाएं सीटियाँ बजाती
तुम्हारे आने का
अहसास कराने लगी है
मैं जानता हूँ

तुम कभी
बरगद की ओर से
तो कभी
पीपल की ओट से
निकल कर मुझमें
समा जाती हो
कभी फूलों से
झरती हो, कभी
कलियों में
हँसती हो
कभी तुम
कोपलों में
गुनगुनाती हो
कभी बजती झरनों की
शहनाइयों के बीच
मुझे अकेला
छोड़ जाती हो
फिर तभी कहीं
नजदीक ही में
किसी कोयल के
कंठ में बैठी, तुम
मधुर सरगम सुनाती हो
लगता है आज फिर
तुम मुझमें
मेरी देह बाँसुरी में
गरजने लगी हो
लगता है आज फिर
तुम मुझमें लरजने
लगी हो।

□

संदिग्ध

मैंने तेरी आँखों में
दहशत और आक्रोश
साथ-साथ देखा है
यह कौन से
दिवंगत क्षणों का
जीवन लेखा है
एक ही साथ
सृजन में
संदिग्ध आकार
बिलकुल साफ-साफ
कौन सा तोल
कैसा सराफ ?

सम-विषम

दिन भर की हारी थकी चिड़ियाँ
आजकल अक्सर
घोंसले तक आ
घोंसले मे नहीं जाती है।
सिंह द्वार पर
तन्हाई को गुनगुनाती है
और एक टक
शिष्ट-शालीन बनी निहारती है
उसके आवेगों में होती है
एक उत्सुकता
एक पैंदेदार लगाव
निःस्वार्थ समर्पण
और देर रात के बाद के आनन्द के

स्वप्निल संसार का आभास
पर बौखला जाती है
टूट जाती है प्रतीक्षा
आँखों में
बिछा लेती है नींद बिछौने
और वह हारी-थकी
नींद के
बहकावे में आ जाती है
और फिर वही निर्दोष
व्यर्थ में लताड़े खाती है
समर्पण से हटकर
विद्रोही और बावली बन जाती है
यही उसका अपराध है
और इसीलिए
वह चीड़े को पल भर नहीं भाती है।
जिसे वह
रोज देर रात तक,
सपने संजोए
टकटकी बांधे निहारती है।
वह तो आज भी
वही सब कुछ लिए नत है
मगर चीड़े का यह फैसला है
वह हरदम गलत है।
भावुकता से वह बड़ी पैनी है
बस इसीलिए
चिड़े के लिए छैनी है
न जाने चिड़ा किन कल्पनाओं के
दैहिक सृष्टिकार का स्वरूप है
या उज्ज्वल भविष्य के

चिन्तन में धुत्त है
रिंद भी है, सुराही भी है
साकी है
मगर—महफिल का फैसला
अभी शेष है।

संपूर्ण कोण

ये फिर कौन सा दुश्मन आ गया
भाई—भाई की जमीन खा गया
कौरव बनकर
फिर पांडवों के लिए
कुरुक्षेत्र बना गया
सच्चाई के लिए सूई भर जमीन भी
धर्म है
और अधिकारों के लिए लड़ना
पांडवों के लिए कर्म है
पांडवों ने हमेशा
शक्ति और सामर्थ्य को पहचाना है
जब कि कौरवों ने
भ्रमवश अपने को ही
दोनों स्थितियों का
सर्वेसर्वा माना है
मैं तो ये खूब जानता हूँ कि
युद्ध कभी भी
शांति नहीं ला सकता
क्योंकि जैसे झूठ सत्य को
मुकुट नहीं पहना सकता
राज्य का सिंहासन तो क्या
स्थायी रूप से राज्य का
कर्मचारी भी नहीं बना सकता

राज्य और कर्मचारी की बातें
कौरव और पाडवों के बीच
अजीब सी लगती होगी
किन्तु यही युद्ध और शाति के
बीच की कसौटी है
और इन्हीं की रेखा सीमायें
कहीं मुर्दी, कहीं जानलेवा, कहीं टेढ़ी
तो कहीं सीधी और
कहीं मोटी है
मै अब तक नहीं जान पाया
कि यह किस तरह की कसौटी है
आदमी, बौद्धपंथी, ईसाई, नानकी
पारसी या फिर कौन सा भी पंथी हो
इन सबसे पहले वह
यह सब नहीं
आदमी है और
इसी आदमीयत ने
मानवजीवन की सवेदनाओं को
अतश में समेटकर
अर्जुन को युद्ध न करने के लिए
मजबूर किया था
और इसीलिए कृष्ण ने
गीता के रुप में
मनुष्यता को
अधिकार और सुरक्षारूपी कर्म का
एक नया
पहनावा दिया था
मै अर्जुन, कृष्ण और
महाभारत के
युद्ध, कर्म और ज्ञान के
त्रिकोण के बीच खड़ा हूँ।

और तलाश रहा हूँ
युगानु रूप
चौथा या संपूर्ण कोण
तलाश जारी है।
आस्थायें कभी नहीं हारी हैं।

सूर्यवंशी चमार

अछूत है—बाहर है,
मैं हूँ साथ में जहर है
मैं 'नीलकंठ' तो नहीं बन सकता
फिर भी
सारी नीलाम्बरी से
कह रहा हूँ,
आप सब की तरह
मैं भी—
बीबी, बच्चों के साथ
रह रहा हूँ,
महान जो भी हैं
वे अपनी जगह
अवश्य स्थापित रहें
मगर एक बात कहना चाहूँगा
बिलकुल नहीं संकुचाऊँगा
स्वागत—
द्वार सजाने से नहीं
मन से होता है,
यह कैसा स्वागत है, सम्मान है ?
जिसमें आदमी
अपनों के बीच
'अपनापन' खोता है !
होता है
और दर्द किसको नहीं

होता है
मैं सभी के साथ तो नहीं
चल सकता हूँ
पर सही साथ छोड़ने की भी
मेरी आदत नहीं
माँ की, बाप की
बेटे की ही नहीं
दहेज की
बलि वेदी पर चढ़ने
वाली बेटी की तकलीफ भी
बड़ी जोर से बोल सकता हूँ
आप भी खूब जानते हैं
मगर मैं प्रमाणित रुप में
उनके गहरे भेद
खोल सकता हूँ
आप सुनिये
मैं सुना रहा हूँ-
एक कड़वी सच्चाई
बता रहा हूँ-
बेटे के बाप
बेटे के वक्त तो
सूर्यवंशी बन जाते है
मगर, बेटी देने के समय
चमार नजर आते हैं
दहेज के विरोध में
मेरे देश में कानून भी
बना है-
मगर वो 'दफा'
लड़की के जलाये जाने
या हत्या कर देने के बाद
आज तक
बेटे के बाप की

मलाई खाने में लगा है
काश ! कोई भी बेटा
सूर्यवंशी या राजवंशी
नहीं होता–
सिर्फ बेटा होता
और अगर
ऐसा होता तो
कोई भी बाप अपनी बेटी को
नहीं खोता
काश हर बेटा ऐसा होता ।

नीलकंठ

नये उजालों के प्रतीकों में
अब भी कोई है
आस्थावान लेनिन सा
गर्वीले सुभाष सा
गर्म रेत पर गिरे
पानी से उठी भड़ास सा
जिसकी आँखों में
अभी भी प्रतिशोध की चमक
चमचमाती है ।
लगता है जैसे
विश्व के
बीमार अरमानों को
फिर से संतुष्टियों
की घूंट देने को आकुल है
बहुत से· ··· ··नीलकंठ ।

□

फर्क

क्योंकर बदल गई है
इन्सान की अदालत
इन्सानियत की खातिर
करते रहे बगावत
फिर एक दिन ये सोचा
इन्सानियत के लिए
बगावत क्यों की जाए
फिर बागी और इन्सान में
फर्क क्या होगा
ऐसे में इन्सानियत कैसे आएगी
और फिर गांधी की भारतीयता
पछताएगी
अच्छा है हम
प्रेम से शुरुआत करें
और सब कुछ जान जाएँ
अपने को
निष्कलंक कर
दुश्मन से भी मुलाकात करें।

हम: एक व्याख्या

हम निरन्तर है, अंतर नहीं
हम उत्तर है, निरुत्तर नहीं
हमारे बीच तुम्हारा क्या काम
तुम्हारी आस्था अनिर्णित है
हम अंधेरे में राह खोजते है
हम जीने के लिए जीते है

मरने के लिए नहीं
हम मन्तर है, जन्तर नहीं
हम निरन्तर है
अंतर नहीं
हमें बढ़ना ही नहीं
बढ़कर मंजिल पाना है
हमारे उद्देश्य बदलने को नहीं
पूरे करने को होते हैं
हम स्वयं जलते है फिर भी
जलकर सदा प्रकाश करते हैं
हम स्वतंत्र है, परतंत्र नहीं
हम निरन्तर है, अन्तर नहीं।

